ईश्वरीय शक्ति को पहचानें

- पी०के० मजुमदार
वैज्ञानिक "ई-1"

आज हमारे जीवन में कोई भी परेशानी है, उसका एकमात्र कारण मानसिक स्तर पर किसी भी कार्य के आनन्द का उपभोग न कर पाना. जितना किसी कार्य में हमारा शरीर शामिल होता है. उतना मन नहीं. दूसरी ओर किसी भी कार्य की अवहेलना कर पाना भौतिक दृष्टिकोण से हानिकारक भी हो सकता है. और भी दयनीय है वो दशा जिसमें बिना दिशा ज्ञान के किसी भी रेलगाड़ी में चढ़ जाना और थोड़े समय के बाद अपने आपको गंतव्य स्थल की बजाय, उस स्थान पर पाते हैं जहाँ से रेलगाड़ी को शुरू होना चाहिये था. अपनी भूल को मानने के बजाय अपनी ग्रन्थियों को तनावपूर्ण कर लेते हैं और सामाजिकता का उपहास करने लगते हो. आज बहुतायात में लोगों की यहीं समस्या है. कारण से अनभिज्ञ ये लोग धीरे-धीरे निवारण की जल्दीबाजी में आसुरी ताकतों के अधीन हो जाते हैं. मेरे मास्टर कहते हैं कि मानव में 6 तत्व समाये होते हैं - काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मत्सर्य. इसमें काम और क्रोध तो ईश्वर की कृपा है और बाकी चार भौतिकता की उपज. उचित कार्य वो जो ईश्वर के प्रति हमारी प्रेम भावना को उजागर करें और जायज क्रोध वो जो ईश्वरीय तत्वों की रक्षा करे. इनके अलावा बाकी विकारों को धीरे धीरे त्यागना ही प्राकृतिक दिशा में रूझान को दर्शाता है और यही सच्ची पूजा भी है.

हाल ही मेरे कई मित्रों को यह शिकायत रही की मुझे छोड़ने की आदत पड़ गई है. कभी कभी वे आश्चर्य भी प्रकट करते हैं तो कभी क्षुब्ध भी हो जाते हैं. दूसरी ओर मुझे यह समझ में नहीं आता कि मैंने गलत क्या किया. क्या मैं किसी को पकड़ के रख सकता हूँ या कोई रख सकता है ? अगर ऐसा संभव होता तो मैं यह प्रयास सृष्टि के साथ मुझे जोड़ने वाले मेरे पिता को स्वर्गवासी होने में रोकने के लिये करता. अपने भाई-बहन और दूसरे सगे संबंधी जो आज इस दुनिया में नहीं रहे, से आग्रह करता कि या तो वे लोग मुझे छोड़कर न जाये या फिर मुझे भी अपने साथ ले जाये. वे लोग जो इस जगत में होते हुये भी मुझसे कोसों मील दूर रहते हैं, उनसे निवेदन करता कि सब कुछ छोड़ मेरे पास आ जाये या फिर खुद ही उनके पास रहने के लिये चला जाता. लेकिन क्या यह मुमकिन है --

दूर क्षितिज के उस पार पास से, पुकारा करे कोई मुझे प्यार से.
पिता, पुत्र भाई या बहना, नहीं छोड़ सकुं संसार मैं अपना.
पूरे हुये नहीं सब काम, छोड़ सकुं यह किसके नाम
फिर क्यों लालायित करती कोई खोज
क्यों मन्द पवन में आती यह सोच
हम पकड़ सकें, हम जकड़ सके
एक बिन्दु को रेखा बना सके
जीवन नहीं है सरल, वक्र का इसमें पहल, हरपल
सामयिक, सुख संतृप्तता, जीवन वहन करेगी दलदल
दिया प्रज्वलित नहीं तो क्या, ईश्वरीय प्रकाश हृदय में ही है
चल दो उस ओर मुग्ध मन से, जहाँ तक रोशनी मालूम पडती है
पास क्षितिज के इस पार से, समझाया करें कोई प्यार से

आनन्द की बात करें, तो मुझे सिनेमा देखने का बहुत शौक है. मुझे यह ध्यान की स्थिति जैसी लगती हैं, जहाँ दो- ढ़ाई घण्टे में भौतिक जीवन के कई पहलू एक साथ, एक के बाद एक हमारे सामने आते हैं, कभी कभी हम उन चरित्रों में समा भी जाते हैं, लेकिन शिथिलता के साथ बैठे रहते हैं, कुछ भी कार्यरत नहीं होते हैं. हमारा ध्यान एक ही ओर होता है और हम उसमें विलिन हो जाते हैं. जैसे ही सिनेमा हाल से बाहर आते है वही सामान्य स्थिति, क्या छोड़ा और क्या पकड़ा. अगर कहानी कुछ गहरी छाप छोड़ गई हो तो बस कुछ समय के लिये. अभी हाल ही में मैं फिल्म देवदास देखने गया, बहुत आनन्द आया, काफी रंग-बिरंगी भव्य सेटस और इसलिये पात्रों में घुसपाना शायद थोड़ा मुश्किल. मैंने शरत जी के इस उपन्यास को कई बार पढ़ा है और इस पर बनी पुरानी फिल्में भी देखी है, लेकिन उस दिन जब मैं इंदौर के रूपाली थियेटर में बैठा अपने परिवारजनों के साथ इस हॉल में बनी फिल्म को देखा तो मुझे देवदास का चरित्र काफी आध्यत्मिक लगा, एक के बाद एक सभी कुछ छूटता गया, किसी पर कोई आपत्ति नहीं, लेकिन जब आपत्ति किया तो सिर्फ अपनी माँ से संबंध टूटने का. उस अधिकार को भला कौन छीन सकता है, आखिर देवदास का अस्तित्व भी तो सिर्फ उसकी माँ से ही जुड़ा हुआ था.

थोड़ी देर के लिये भौतिकवाद को छोड़ और विचार करें तो अनायास यह विश्वास दृढ़ हो जायेगा कि हम सिर्फ सृष्टि के ही अंग है और किसी खास वजह से ऊर्जा का, स्थानांतरण होने के कारण इस प्रकृति से उठकर एक शरीर में समा गये हैं. एकदिन उसी ऊर्जा को फिर से उसी ब्रहमांड में विलीन हो जाना है, जहाँ से हटकर एक दिन यह एक शरीर रूपी कक्ष में थोड़े दिनों के लिये रहने आ गई थी, इसी को मृत्यु कहते हैं. एक सुदमता को पार कर ब्रहमांड में विलीन हो जाने को ही जीवन कहते हैं. यह सुदमता ब्रह्मांड में तभी विलीन हो सकता हैं, जब उस वस्तु का गुण, ब्रह्मांड के शुद्ध एवं सात्विक परिवेश को मेल खा सके अन्यथा युगों-युगों तक एक शरीर से दूसरे शरीर में विचरण करते रहना पड़ सकता है. यही सुदमता हमारी आत्मा है, हमारा सात्विक मन है जो प्रकृति का ही अंग है. मेरे मास्टर इस बारे में कहते हैं कि आत्मा पर पूर्व जन्मों के संस्कारों के लेप चढ़े हूये होते हैं जो कि परत दर परत अध्यात्मिक अभ्यास के जरिये आहिस्ता-आहिस्ता दूर किये जा सकते हैं. साथ ही यह भी होना चाहिये कि इन परतों पर इस जन्म में कोई और परत न चढ़ सके. प्रकृति के नजदीक रहने वालों का अपने ऊपर कोई भी वश नहीं होता, वे सिर्फ प्रकृति के अधीन होते हैं, यहीं हमारा परम लक्ष्य होना चाहिये, कोई जीवित व्यक्ति हमारा उदाहरण न कोई और पकड़ सके और न ही छोड़ सके.

चलिये, फिर लौट आते हैं भौतिकवाद की ओर.. समस्या है जीवन निर्वाह करने की. सिर्फ बातों से तो पेट नहीं भरता. फिर कई जिम्मेदारियां भी तो हैं. प्रकृति क्या करेंगी इसमें, सब तो हमें ही करना है. क्या यह सच है ? क्या सब कुछ हम करते हैं ? क्या जो हम करते हैं प्रकृति पर उसका कोई भार नहीं पड़ता ? फिर क्यों होता है, विश्व सम्मेलन पर्यावरण और प्राकृतिक स्रोतों का, जहाँ हिमाचल के घटते हुये हिमपात की चिंता प्रकट की जाती है. क्यों व्यथित होते हैं हम लोग, नदियों के सूख जाने और सतही जल स्तर के नीचे जाने से. क्यों विवश हैं लोग, वायुमण्डल में ओजोन की मात्रा को बनाये रखने के लिए और उष्णता को सुनिश्चित, सुनियोजित करने के लिये. अगर मानव प्रवृत्ति का प्रकृति पर कोई असर न होता तो विश्वास कीजिये कोई प्राकृतिक विपदा होती ही नहीं. मैं तो यहां तक सोचता हूँ कि जनसंख्या वृद्धि न केवल एक राष्ट्रीय समस्या है, बल्कि यह एक प्राकृतिक समस्या भी है. क्योंकि हर जन्म के साथ, प्रकृति से उतनी ऊर्जा हम अलग करते हैं, जिससे प्रकृति उतना ही कमजोर बनती हैं. वर्ना समय-समय पर किसी विपदा के रूप में लाखों हजारों व्यक्तियों की मौत के बहाने उसे अपने संतुलन को बनाये रखना न पड़ता. इसे समझें और वैज्ञानिक दृष्टिकोण से सहीं संतुलन बनाये रखने में प्रकृति को सहयोग दे. यही संतुलन हमारे दैनिक जीवन में भी आवश्यक है.

कुछ लोगों का मानना है कि भौतिकवाद और अध्यात्मिकता जीवन के दो भिन्न पहलु हैं और उनमें परस्पर कोई संबंध नहीं है. यदि यह सच मान लिया जाय, तो कम से कम मैं एक दोहरी जिन्दगी जी रहा हूँ

और फिर यह कितने समय तक साथ देगी. यह तो मस्तिष्क ही जाने. इस सोच के साथ हम आखिर हम कहाँ आश्वस्त हो- भौतिक लक्ष्य के बारे में या फिर अध्यात्मिक लक्ष्य की प्राप्ति में. दिशा वाहन की तो एक ही होगी चाहे पहिये कितने भी क्यों न हो. दरअसल जीवन तो एक ही हैं और वह भी प्राकृतिक सत्संग के लिये. अध्यात्मिकता उसकी प्राथमिक आवश्यकता है, लेकिन प्राकृतिक सुदमता जिस भौतिक शरीर का वहन करके सृष्टि में फिर से समा जाने के लिये अभ्यास कर रही है, उसकी जरूरत पूरा करने के लिये जीविकोपार्जन तो सिर्फ एक माध्यम है, और समाज एक चरित्र निर्माण का साधन, जिसके बिना भौतिक अनुशासन का आ पाना दुर्लभ है. जिनके पास यह दोनों ही ईश्वर प्रदत्त हो, उनके लिये सिर्फ अध्यात्मिक लक्ष्य की प्राप्ति जीवन का अंग हो सकता है. लेकिन बहुतायात में लोग इतने भाग्यशाली नहीं होते, इसलिये उन्हें कुछ हद तक भौतिकवाद को स्वीकार करना ही होगा. लेकिन एक जीवन को सिर्फ जीविकोपार्जन करने में ही गंवा दे, यह चारित्रिक निर्माण के लिये भी हानिकारक है. दुःख की बात यह है कि आज चरित्र की ओर किसी का भी ध्यान नहीं है. बस हमारी कोशिश यह है कि किस तरह अच्छे से अच्छा जीवन निर्वाह के भौतिक साधन जुटायें. इसके लिये हम कुछ भी करने को तैयार रहते है. यह भौतिकवाद की पराकाष्ठा है, और प्रकृति से सर्वाधिक दूरी. जीवन की प्राकृतिक उपार्जन के अनुसार सुनियोजित करने के बजाय कृत्रिम उपार्जन वृद्धि के आयाम ढूँढने लगते हैं. फिर अन्दर के उस प्राकृतिक सुदमता को समझाने के प्रयास में कृत्रिम वस्तुओं और आनन्द के वशीभूत होकर विभोर हो जाना चाहते हैं. इस तरह अनायास ही भौतिक ऊर्जा का भी ह्रास करते है.

मानव मन कितना ही व्यस्त क्यों न हो और दूसरों में कितना भी घुलामिला क्यों न हो. कभी न कभी एक पल के लिये भी वह एकाकी जरूर होता है. इस एकाकीपन में नित्य दोष गुणों का आंकलन करना उसका स्वभाव है. इसे मन की विडंबना ही कहिये कि दूसरों से चाहे वह कितना ही झूठ बोले, अपने द्वारा उसी कार्य की पुनरावृत्ति कर पाना मुमकिन नही. इसलिये जिस खूबी से वह दूसरों के प्रश्नों को टाल जाता है, उतनी सहजता वह अपने स्वयं के जटिल प्रश्नों के उत्तर देने में नहीं रख पाता. इन्हीं प्रश्नों के उत्तर न ढूँढ पाने पर, दस्यु वाल्मिकी, महर्षि बने, और तुलसीदास जी ने रामचरित्र मानस की रचना की. अध्यात्मिक दृष्टिकोण से हर प्राकृतिक सुदमता को उस स्तर पर पहुँचना है, और भौतिक अंश में आसक्ति कब विरक्ति में परिवर्तित होगी. उसका स्थान, काल, पात्रता अनिश्चित है. यही है अंतर्द्वन्द की शुरूआत और अनिश्चितता का पहला आभास, जो मन को अशांत और कमजोर करता है, और दूसरी और अपनी भौतिक उपलब्धियों की उड़ान में मस्तिष्क काबू से बाहर हो जाता है. हमारे लिये मस्तिष्क की इच्छा के बगैर कुछ भी कर पाना असंभव है, लेकिन अच्छे उदाहरणों का अनुकरण तो कर ही सकते हैं.

मस्तिष्क की पूर्वाग्रही ग्रंथियों से निकलकर किसी भी धर्मग्रंथों का अवलोकन करें, तो पता चलेगा कि कोई ईश्वर भी बिना किसी कारण इस धरती पर अवतरित नहीं हुआ है. फिर मानव की क्या विसात कि बिना किसी कारण से उसकी इस ब्रह्मांड में पर्दापण हो. हर व्यक्ति किसी न किसी खास मकसद से इस युग में आया है, और अपने साथ तथाकथित गुणदोष सृष्टि से उधार मांग कर लाया है. हेतु समाप्त होने पर न तो व्यक्ति का कोई निशान रह जायेगा, और ना ही उसके गुण दोषों का उल्लेख. फिर क्यों व्यर्थ अपना समय और ऊर्जा गंवाते हैं. संसार बहुमंजिली ईमारत है, हो सकता है हम अलग-अलग तल पर खड़े हो, या किन्हीं भिन्न-भिन्न सीढियों पर. लेकिन लक्ष्य तो एक ही है. विचारों की भिन्नता के कारण किसी दूसरे को गिराने का प्रयास क्यों करें ? आईये, परमात्मा का ध्यान करें, और अपने सुदमता को प्रकृति के करीब लाये. यही ईश्वरीय शक्ति है, और यही महान शक्ति है.

* * * * *